International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(5): 80-84

International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(5): 80-84
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-07-2016
Accepted: 20-08-2016

अभिषेक अग्निहोत्री
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
इ०वि०वि०, इलाहाबाद

राज्य के सप्तांग सिद्धान्त

अभिषेक अग्निहोत्री

सारांष
सभी प्राणियों का शरण–स्थल राजधर्म है, महाभारत के अनुसार राजधर्म के सहारे ही जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव होना बताया गया है–*सर्वे धर्मा राजधर्म प्रधानाः सर्वे वर्णाः पाल्यमाना भवन्ति। सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजस्त्यागं धर्मं चाहुरग्रंथ पुराणम्।। (शान्ति पर्व–63.27)* राजा राजधर्म का पालन करते हुए ही सृष्टि को नियन्त्रित करता है। राजा के कार्यों और उसके द्वारा स्थापित व्यवस्था पद्धति के आधार पर सप्तांगों का विवेचन किया गया है। राज्य के यह सप्तांग उसके अस्तित्व के लिए आवश्यक है। राज्य के आधारभूत विकास के लिए इन सात अंगों का ज्ञान अति आवश्यक है। इस लेख में इन्हीं सप्तांगों के महत्व का प्रतिपादन किया गया है।

कूट शब्दः राज्य, सप्तांग सिद्धान्त, राजनीति–शास्त्र

प्रस्तावना
राजनीति–शास्त्र के विद्वानों ने राज्य के सात अंगों का विवेचन किया है। प्राचीन भारत में राज्य के अंगों की स्पष्ट धारणा लोगों के मन में थी। इन्हें 'प्रकृतियाँ' कहा जाता था जिनकी मुख्यतः संख्या सात बताई गई है। इसी से सप्तसिंधु, सप्ताग्नि, सप्त मनु आदि का उल्लेख वहीं से प्रारम्भ होता है। परन्तु राज्य के सप्तांगों की चर्चा कब हुई यह स्पष्ट रूप से कहना सम्भव नहीं हैं। सेलेटोर के अनुसार शतपथ ब्राह्मण के तत्काल बाद अथवा मनुस्मृति के पूर्व यह विकसित हुई होगी क्योंकि शतपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख मिलता है।[1] राज्य के सात अंगों का विवेचन न तो वैदिक ग्रन्थों में और न ही धर्म सूत्रों में प्राप्त होता है। सप्तांगों को सबसे पहले मनु एवं कौटिल्य ने परिभाषित किया है। कुछ प्राचीन धर्मसूत्रों में राजा, अमात्य, कोश आदि अंगों का विवेचन हुआ है पर सप्तांगों का पूर्ण स्वरूप और परिभाषा के अभाव में उसे महत्त्व न देना ही उचित होगा। प्रायः सभी राजनीति–शास्त्रज्ञों ने सात अंगों को बताया है– स्वामी, अमात्य, जनपद या राष्ट्र, दुर्ग, कोश, दण्ड और मित्र।[2] जनपद के लिए जन या राष्ट्र शब्दों का और दण्ड के लिए बल ऐसा नामों में कहीं–कहीं अन्तर देखने में आता है। कौटिल्य ने राजा को राज्य कह दिया और संक्षेप में राज्य की प्रकृति कहा है।[3] राजा ही मन्त्रियों, अधिकारियों, कर्मचारियों एवं अधीक्षकों की नियुक्ति करता है, सभी प्रकृतियों को धारण करता है और वही सबको गौरव एवं शक्ति प्रदान करता है। राजा समृद्धशाली अथवा सम्पत्तिवान् है तो वही अपनी प्रकृतियों को समृद्धि प्रदान करता है। मन्त्रियों अर्थात् प्रकृतियों को वही गौरव प्राप्त होता है जो राजा को है, अतः राजा सुस्थिर एवं अक्षय शक्ति का केन्द्र है। यदि राजा अपने मन के अनुरूप कार्य करता है तो इससे विपत्तियाँ घबराती हैं, मन्त्रियों की हानि होती है और अन्ततः राज्य का नाश होता है। राज्य के संचालन में शरीर के अंगों की तरह सबकी महत्ता होने से इन सात अंगों को राज्य शरीर का अंग माना गया है। मनु के अनुसार एक अंग की कमी दूसरे से पूरी नहीं हो सकती।[4] शुक्र ने सप्तांगों की तुलना शरीर से की है– राजा सिर है, मन्त्री लोग आँखें है, मित्र कान है, कोश मुख है, बल मन है, दुर्ग हाथ है और राष्ट्र पैर है।[5] अतः राज्य को एक सजीव रूप में मनीषियों ने वर्णित किया है। इस जगह शरीर के विभिन्न अंगों के गुणों के आधार पर इन सप्तांगों को निरूपण किया गया है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों में मतवैभिन्य दिखाई देता है। डॉ० अल्टेकर ने इस समता को उचित नहीं माना है क्योंकि शरीर से यदि कोई एक अंग अलग कर दिया जाये तो वह जीवित नहीं रह सकता पर ठीक इसके विपरीत यदि राज्य के कुछ अंग जैसे दुर्ग, कोश आदि अलग कर भी दिए जाये तो भी वह जीवित नहीं रहेगा। परन्तु कामन्दक के अनुसार सातों अंगों को समन्वित होकर कार्य करना ही राज्य श्री की वृद्धि का कारण बन सकता है।[6] मनु एवं महाभारत ने राज्य के अंगों में स्वाभाविक एकता देखी है। सभी अंगों का मिलकर कार्य सम्पन्न करना होगा, तभी लक्ष्य पर प्राप्ति पा सकते हैं। विद्वानों के अनुसार सभी अंग महत्त्वपूर्ण है कोई दूसरे से हीन नहीं है, एक की महत्ता अपने स्थान पर है वह दूसरे से बढ़कर नहीं होती।

Correspondence
अभिषेक अग्निहोत्री
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
इ०वि०वि०, इलाहाबाद

राज्य निर्माण केवल जनसमूह से नहीं होता, अपितु राज्य के लिए जनसमूह का भौगोलिक सीमाओं के भीतर रहना अति आवश्यक है, स्वामी अर्थात् राजा के अनुशासन पर ही जन–समुदाय को चलना होगा, राज्य के लिए एक विशिष्ट शासन क्रम होता है, उसके लिए एक सुव्यवस्थित आर्थिक व्यवस्था होती है, रक्षा के लिए बल की आवश्यकता होती है और अपने आस–पड़ोस के देशों से मैत्रीभाव, ये सब राजा के द्वारा ही सम्पादित होने वाले कार्य हैं। किसी भी राज्य के लिए चार महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं– (1) स्वामी (राजा), (2) शासन व्यवस्था, (3) निश्चित भूमि एवं (4) जन संख्या।[7] अब राज्य के इन सात अंगों का क्रमशः वर्णन करेंगे।

सामरिक आवश्यकताओं ने स्वामित्व या नृपत्व को जन्म दिया जो ब्राह्मणों में भी उल्लिखित हैं कि देवों ने राजा के न रहने पर अपनी दुर्दशा देखी और तभी एकमत से राजा का चयन किया। स्वामी के संदर्भ में ही राजा कहा गया है। 'रज्' धातु से निष्पन्न होने वाले राजा शब्द का अर्थ है 'प्रसन्न करना' अर्थात् वह प्रजा को प्रसन्न सुखी और संतुष्ट रखता है।[8] जब सभी भय से विचलित होकर इधर–उधर दौड़ने लगे और विश्व में कोई स्वामी नहीं था तब विधाता ने इस विश्व की रक्षा के लिये राजा का प्रणयन किया। राजा राज्य का स्वामी होता है, अधिकारी भी होता है, इसी से इसे सप्तांगों में स्वामी की संज्ञा दी गई है। राजा को राज्य में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। मनु आदि ने कहा है कि राजा भले ही बालक क्यों न हो पर उसे मानव का बालक समझकर अपमान नहीं करना चाहिए क्योंकि वह नर रूप में देवता ही होता है।[9] राजा को दण्डधर की उपाधि दी गयी है। दण्ड सब पर राज्य करता है, सबकी रक्षा करता है, यह न्याय के रक्षकों के सो जाने पर भी जगा रहता है, बुद्धिमान लोग इसे धर्म कहते हैं। किन्तु दण्ड का प्रयोग सीमा से ज्यादा नहीं करना चाहिए। न तो दण्ड को अति कठिन होना चाहिए और न ही अति कोमल, प्रत्युत इसे अपराध के अनुसार होना चाहिए। महाभारत में कहा गया है कि सर्वप्रथम राजा की प्राप्ति करनी चाहिए, तब पत्नी और इसके उपरान्त धन का संचय करना चाहिए, क्योंकि राजा के अभाव में न तो पत्नी रह सकेगी और न धन प्राप्त हो सकेगा।[10] कात्यायन के अनुसार राजा असहायों का रक्षक, गृहहीनों का आश्रय, पुत्रहीनों का पुत्र एवं पिताहीनों का पिता है।[11] राजा सूर्य, चन्द्र, वायु, यम, वरूण, अग्नि, पृथ्वी एवं विष्णु के कार्य करता है, अतः उसमें इनके अंश पाये जाते हैं। मनु ने घोषित किया है कि राजा देवों के अंश से बना है, ऐसा पंचतन्त्र में आया है।[12] राजा को भले ही दैवी अधिकार प्राप्त थे पर वह अपनी मनमानी नहीं कर सकता था। राजा को शक्तिमान्, दयालु, ज्ञानी, अनुशासनप्रिय, सत्यवादी, कार्यपटु, मेधावी, साहसी, दुर्बलों की रक्षा करने वाला, तर्कशास्त्र, शासनशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं तीनों वेदों में प्रशिक्षित होना चाहिए। भिन्न–भिन्न शास्त्रों में राजा के अलग–अलग गुणों को विवेचन हुआ है।

महाभारत शान्तिपर्व में 36 गुण, कामन्दकनीति में 19 गुण, मानसोल्लास में 44 गुण, अग्निपुराण में 21 गुण, परशुराम–प्रताप में 96 गुणों की चर्चा की गई हैं। राजा के लिए छः विपत्तियाँ भी हैं– दिन में सोना, आलस्य, कायरता, रोष, सुकुमारता एवं दीर्घसूत्रता। राजा के गुणों एवं दायित्वों का यहाँ विवरण दिया गया। स्वामी का पद केवल राजत्व से बंधा होता है। मनु के समय तक राजा में देवत्व की कल्पना थी जो कौटिल्य के समय टूट गई। अब राजा अपने कर्मों, आचरणों, व्यवहारों से स्वामी और श्रद्धा का पात्र होता है। उससे वह समाज का सामान्य सदस्य प्रतीत होता है जो समाज के राजा होने की सम्भावना लगती है।[13]

राज्य के सात अंगों में दूसरा स्थान अमात्य का है, जिसे हम सचिव या मन्त्री भी कह सकते हैं। वेदों में अमात्य शब्द का बीज पाया जाता है– हे अग्नि, मन्त्रियों के साथ हाथी पर चढ़े हुए राजा के समान जाओं।[14] अमात्य का ऋग्वेद में विशेषण के रूप में उल्लेख हुआ है,जिसका अर्थ है 'स्वयं हमारा' अथवा 'हमारे घर में रहने वाला'। ऐतरेय ब्राह्मण में 'सचिव' शब्द और कौटिल्य ने 'मन्त्री' कहकर सम्बोधित किया है। कौटिल्य के अनुसार सचिव और मन्त्री में अन्तर है, उन्होंने सचिव को मन्त्री से नीचे का स्वीकार किया है।[15] अधिकांश ने अमात्य, सचिव और मन्त्री इन तीनों को प्रशासनिक क्षेत्र में लगभग समान महत्त्व का दर्शाया है। मन्त्रियों की संख्या को लेकर प्राचीन काल से ही बहुत मतभेद प्रदर्शित होता रहा है। कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं कामन्दकनीति के अनुसार मन्त्रियों की संख्या 12, बार्हस्पत्य के अनुसार 13, मनु एवं मानसोल्लास का कहना है कि 7 या 8 और महाभारत शान्ति पर्व में राजा के 37 मन्त्रियों को कहा गया है। राज्य एक व्यक्ति के विचार के अनुसार न चले बल्कि मंत्रियों की सलाह से चले, जिनकी मंत्रणा का आदर राजा को करना चाहिए। कौटिल्य ने कहा है कि एक पहिए से रथ नहीं चलता अतः सचिवों का सहयोग राज्य संचालन में लेना चाहिए।[16] उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि 8 या उससे अधिक संख्या वाले मंत्रियों की एक परिषद् होती थी। सभी विद्वानों ने अमात्यों के निम्न गुणों का उल्लेख किया है– मन्त्री देशवासी होना चाहिए, उच्च कुल का होना चाहिए, प्रभावशाली होना चाहिए, कला–निपुण, स्मृतिवान्, सतत जागरूक, अच्छा वक्ता, धैर्यवान्, मेधावी एवं ईर्ष्या से दूर। कौटिल्य ने अमात्य को तीन श्रेणी का बताया है– उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणी। जिनमें उपर्युक्त सभी गुण होते हैं वह उत्तम श्रेणी का और मध्यम एवं निम्न श्रेणी में क्रम से उपर्युक्त गुणों के चौथाई तथा आधे का अभाव पाया जाता है।

राजा को मन्त्रियों से मंत्रणा ऐसे स्थान में करनी चाहिए जो सर्वथा एकान्त में हो और जहाँ का स्वर बाहर न जा सके और जिसे पक्षी भी न सुन सके, क्योंकि ऐसा सुनने में आया है कि तोता, मैना, कुत्ता एवं अन्य पशुओं द्वारा भेद खोल दिया गया है।[17] मन्त्री परिषद् से एकान्त में परामर्श करना अच्छा समझा जाता था। नीतिशास्त्रों का कहना है कि राजा को त्रुटिमय मार्ग से हटाना मन्त्रियों का कर्तव्य है और मन्त्रियों की मंत्रणा को सुनना राजा का कर्तव्य है अच्छे एवं कर्तव्यशील मन्त्रिगण न केवल मित्र है प्रत्युत राजा के गुरु हैं।[18] धर्मशास्त्रों के अनुसार मंत्रियों के सोचने के मुख्य विषय ये हैं– निर्धारित नीति से उत्पन्न फल की प्राप्ति, राज्य के कार्य करना, मन्त्र, किसी किये जाने वाले कार्य के अच्छे या बुरे प्रभावों के विषय में भविष्यवाणी करना, आय एवं व्यय, दण्डनीय को दण्ड देना, शत्रुओं को दबाना, अकाल जैसी विपत्तियों के समय उपाय करना, राजा एवं राज्य की रक्षा करना।[19]

तीसरा अंग जनपद या राष्ट्र है। ऋग्वेद में राष्ट्र शब्द का उल्लेख है कि मेरा राष्ट्र दोनों ओर या दोनों गोलकों में है।[20] यजुर्वेद में आशीर्वचन के रूप में राष्ट्र शब्द आया है– इस राष्ट्र में राजा शूर, महारथी और धनुर्धर हो।[21] डॉ० रामशरण शर्मा के अनुसार इसका शाब्दिक अर्थ जनजातीय बस्ती है।[22] पुराणों के अनुसार तो राज्य के सभी अंगों में राष्ट्र सर्वश्रेष्ठ हैं। मनु ने कहा है कि राजा को ऐसे देश में घर बनाना चाहिए, जहाँ पानी न जमा रहता हो, जहाँ प्रचुर अन्न उपजता हो, जहाँ अधिकतर आर्यों का वास हो, जहाँ उपद्रव न हो, जो सुन्दर हो, जहाँ के सामन्त अधिकार में आ गये हों और जहाँ जीविका के साधन सरलता से प्राप्त हो सके।[23] भूभाग जितना बड़ा होगा राज्य की समृद्धि उतनी होगी। उस भूभाग की भूमि की उर्वरता, जलवायु का क्रमशः परिवर्तित होते रहना, पशुओं के चारागाह के लिए उपयोगी होना नितान्त आवश्यक था कि जनता ओर पशु को समुचित भोजन और जीवन की सुविधा मिल सके। जनता के सम्बन्ध में एक बात विशेष ध्यान देने की है कि जिस भू–भाग में श्रमिक अधिक होंगे वह अधिक समृद्धशाली होगा क्योंकि वहाँ खेती की सुविधा अधिक रहेगी, अतः इस के फलस्वरूप उद्योगों का भी विकास वहाँ होगा। कौटिल्य के अनुसार राजा को ग्रामों का मण्डल प्राचीन दूहों या नवीन स्थानों पर बनवाना चाहिए, जिसमें अन्य देशों के लोग बसने को प्रेरित किये जायैं, जहाँ राष्ट्र के अधिक जनसंख्या वाले स्थानों से लोग बुलाकर बसाये जायैं, किन्तु प्रत्येक ग्राम में 100 से न कम और न 500 से अधिक लोगों को बसाया जाये और उसमें अधिकतर कृषकों को बसाया जाये, प्रत्येक ग्राम का विस्तार एक या दो कोस का हो।[24]

बुद्धिमान् राजा को अपनी राज्य सीमाएँ बढ़ाने तथा प्रजा को अपने अधिकार में रखने के लिए कई उपायों का सहारा लेना पड़ता है, ये उपाय चार हैं– साम, दान, भेद और दण्ड।[25] अमरकोश के अनुसार देश, राष्ट्र, विषय एवं जनपद शब्द पर्यावाची हैं।

दुर्ग को चौथा अंग कहा है, दुर्ग को किला या राजधानी भी कहते हैं। राजधानी ही शासन–यन्त्र की धुरी है। ऋग्वेद में 'दुर्ग' का प्रयोग किला के अर्थ में किया गया है, जिसका अर्थ है चहारदिवारी, अथवा गढ़।[26] प्राचीन युद्ध परम्परा तथा उत्तर भारत की भौगोलिक स्थिति के फलस्वरूप राज्य के अंगों में राजधानी व दुर्गों को इतनी महत्ता प्राप्त हुई। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि दुर्ग की स्थिति से राजा की सुरक्षा, प्रजा एवं कोश की रक्षा होती है।[27] मनु ने दुर्ग निर्माण के कारण को बताते हुए कहा है कि दुर्ग में अवस्थित एक धनुर्धर सौ धनुर्धरों को तथा सौ धनुर्धर एक सहस्त्र धनुर्धरों को मार गिरा सकते हैं।[28] कौटिल्य ने चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया है, यथा – औदक दुर्ग जो जल से सुरक्षित हो, जो द्वीप सा हो, जिसके चारों ओर जल हो, पर्वत दुर्ग जो पहाड़ या गुफा वाला हो, धान्वन दुर्ग जो मरूभूमि वाला, जलविहीन भूमिखण्ड पर हो तथा वन दुर्ग जहाँ खंजन, जलमुर्गियाँ हो, जल हो और बेंत एवं बाँसों के झुण्ड हों।[29] मनु ने छः प्रकार के दुर्ग बताए हैं– धान्व दुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, वार्क्ष दुर्ग, नृदुर्ग और गिरिदुर्ग।[30] दुर्ग के भीतर राजमार्ग कहाँ हो, राज–प्रसाद कहाँ हो, मन्त्रिगृह कहाँ हो, यज्ञशाला इत्यादि कहाँ और किस–किस दिशा में कितने हो इस पर भारतीय धर्मशास्त्रों में बहुधा विचार प्रस्तुत किए गए हैं। कौटिल्य के अनुसार राजधानी के मध्य में अपराजित, अप्रतिहत, जयन्त एवं वैजयन्त के मूर्तिगृह तथा शिव, कुबेर, लक्ष्मी के मन्दिर बने रहने चाहिए। राजप्रसाद के उत्तर में राजा के आचार्य, पुरोहित, मन्त्रियों के गृह तथा यज्ञभूमि एवं जलाशय होने चाहिए। दुर्ग के अन्दर प्रमुख द्वारों के नाम ब्रह्मा, यम, इन्द्र एवं कार्तिकेय के नामों पर रखे जाने चाहिए। भारतीय विद्वानों के विवरणों के अनुसार दुर्गों के विविध प्रकारों का ज्ञान प्राप्त होता है जिनमें भोजन, अन्न, सम्पत्ति, जनता, यंत्र और जल सुरक्षित रहता है।

राज्य का पाँचवा अंग कोश है। जिस राज्य में राजा का कोश रिक्त हो जाता है, तब वह नगरवासियों एवं ग्रामवासियों को चूसने लगता है। कई शास्त्रों में तो कहा है कि ये जो सात अंग है इन सबका आधार कोश ही है।[3] कौटिल्य ने ठीक ही कहा है कि राज्य के सारे व्यापार कोश पर निर्भर रहते हैं, अतः राजा को सर्वप्रथम कोश पर ध्यान देना चाहिए।[32] प्राचीन भारत के राज्यों में दो स्तम्भ थे। राज्य की व्यवस्था कोश पर टिकी रहती है क्योंकि सभी खर्च कोश से ही होते हैं इसकी पूर्ति के कई स्त्रोत होते थे। कोश भरने के लिए धर्मशास्त्रों द्वारा कई सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी है। कर की मात्रा वस्तुओं के मूल्य एवं समय पर निर्भर होती थी, जो धर्मशास्त्रों द्वारा निर्धारित है कोई राजा अपनी मनमानी नहीं कर सकता था। कोश के भरण के लिए आठ प्रकार के स्त्रोतों का उल्लेख कामन्दकनीति में किया है– कृषि, जल–स्थल के मार्ग, राजधानी, जलों के बाँध, हाथियों को पकड़ना, खानों में काम करना सोना एकत्र करना, धन उगाहना, निर्जन स्थानों में नगरों व ग्रामों को बसाना।[33] मानसोल्लास के अनुसार कोश, सोना, चाँदी, रत्नों, आभूषणों, बहुमूल्य परिधानों, सिक्कों आदि से परिपूर्ण रहना चाहिए।[34] कौटिल्य ने यह भी कहा है कि जब कोश खाली हो और कोई विपत्ति सामने आ खड़ी हो, तो राजा कृषकों, व्यापारियों, मद्य–विक्रेताओं, वेश्याओं, पशु आदि रखने वालों से विशिष्ट याचना करने के उपरान्त धनिकों से यथासामर्थ्य सोना देने का अनुरोध कर सकता है और उन्हें दरबार में कोई ऊँचा पद या छत्र या कोई उचित सम्मान देकर बदला चुका सकता है।[35] राजा को कर देने के विभिन्न कारकों का उल्लेख हुआ है। धर्मशास्त्रों के अनुसार राजा भूमि का स्वामी है, किन्तु धन के अन्य प्रकारों का नहीं, वह उपज के छठे भाग का अधिकारी है, मनुष्य भूमि पर निवास करते हैं अतः वे साधारण रूप में स्वामी से लगते हैं किन्तु वास्तव में उनका स्वामित्त्व दूसरे ढंग का है, वास्तविक स्वामी तो राजा ही होता है।[36] राज्य की आय के प्रमुख एवं सतत चलने वाले साधन तीन होते हैं– उपज पर राजा का भाग, चुंगी एवं दण्ड से प्राप्त धन। जो राजा अन्यायपूर्वक प्रजाजन से कर, दण्ड, सस्य भाग, शुल्क आदि लेता है वह पाप–कर्म करता है, कात्यायन ने ऐसा कहकर आध्यात्मिक परिणामों की ओर संकेत किया है।[37] राज्य की व्यवस्था का आधार कोश ही है क्योंकि सभी खर्च कोश से ही होता था।

छठे अंग के रूप में बल है, बल को ही अन्य ग्रन्थों में दण्ड कहा गया है। वेदों में बल का उल्लेख तो नहीं परन्तु ऋग्वेद में सेना, अस्त्र–शस्त्र, युद्धों आदि का वर्णन कई बार हुआ है, ऋग्वेद में जहाँ युद्धाकोश को सेनानी होने के लिए पुकारा गया है।[38] किन्तु सुमन्त के मत से दण्ड का तात्पर्य है 'शारीरिक दण्ड या अर्थदण्ड' और वे चतुरंगिणी सेना की गणना कोश के अन्तर्गत मानते हैं।[39] अधिकांश आचार्यों के अनुसार सेनाएँ छः प्रकार की होती है– मौल, भृतक, श्रेणी, मित्र, अमित्र और आटविक।[40] भिन्न–भिन्न ग्रन्थों में अलग–अलग प्रकार की सेनाओं का वर्णन किया गया है, सभापर्व में चार, युद्धकाण्ड में पाँच इसी तरह कई प्रकारों का उल्लेख हुआ है। चतुरंगिणी सेना जो संज्ञा की गई है, इसमें सेना के चार भाग होते थे– अश्व, हस्ती, रथ एवं पदाति। प्राचीनकाल में राजा विशाल सेना को रखते थे, जिससे उनके प्रभुत्व का दर्शन होता था और यही बल उनको सम्राट बनाता था। कौटिल्य ने सेना के प्रबन्ध, आक्रमण–व्यवस्था, देशद्रोहियों के साथ कैसा व्यवहार हो इन सम्बन्धों में विशद वर्णन किया है। सेना में युद्ध के लिए प्रयोग होने वाले आयुधों के विषय में भी बहुत सारी चर्चाएँ की गयी है। वेदों में बहुत से अस्त्र–शस्त्रों का उल्लेख हुआ है– ऋष्टि, बाण, तूणीर, अंकुश, परशु, कृपाण इत्यादि। अथर्ववेद (4.66) में विषाक्त बाणों का उल्लेख आया है। महाभारत के अनुसार बल के पाँच प्रकार होत हैं– बाहुबल, अमात्यलाभ, धनलाभ, अभिजातबल तथा प्रज्ञाबल अर्थात् जो ज्ञान से प्राप्त बल हो और उसे ही सर्वोत्तम बल कहा जाता है।[41] आदि पर्व में तो योद्धा की शक्ति की निन्दा की गयी है और ब्राह्मणों की आध्यात्मिक शक्ति को वास्तविक शक्ति कहा गया है।[42]

राज्य के सातवें अवयव के रूप में मित्र है। महाभारत में मित्र के सम्बन्ध एक विशेष उल्लेख हुआ है कि कोई भी किसी का न मित्र है न शत्रु, मित्र एवं शत्रु धन या किसी व्यक्ति द्वारा किये जाते हुए कर्मों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।[43] इसी बात का समर्थन नीतिशास्त्र ने भी किया है।[44] मित्र बनाने की आवश्यकता पर मनु ने बहुत बल देते हुए राजा के लिये अच्छे मित्र के गुणों का वर्णन किया है कि "राजा सोना एवं भूमि पाकर उतना समृद्धिशाली नहीं भले ही वह मित्र कम धन वाला हो, क्योंकि भविष्य में वह शक्तिशाली हो जायगा।[45] शक्तिशाली, साहसी एवं विनम्र के सामने अन्य लोग ऊपर से मित्रवत् व्यवहार करते हैं, किन्तु भीतर–भीतर शत्रुता रखते हैं और अवसर की ताक में रहते हैं। महाभारत के अनुसार चार प्रकार के मित्र होते हैं– समान ध्येय वाले, शरण एवं सुरक्षा चाहने वाले, स्वभाव से ही जो सुहृद् हैं तथा वे जो प्राप्त किये जाते हैं उनको आप कृत्रिम कह सकते हैं।[46] कामन्दक के मत से भी ये चार प्रकार के हैं– औरस अर्थात् जन्म–जात, कृतसम्बन्ध, वंशक्रमागत एवं रक्षित।[47] कामन्दक ने मित्र बनाने का उद्देश्य बताते हुए कहा है कि तीन पुरूषार्थों– धर्म, अर्थ एवं काम में से किसी एक की प्राप्ति के लिए मित्र बनाया जाता है।[48] मित्र के अन्य तीन भेद विद्वानों ने कहे हैं– सहज, कृत्रिम एवं प्राकृत। सहज मित्र वे हैं जो माता–पिता के सम्बन्ध से प्राप्त होते हैं अर्थात् परिवार या रिश्तेदार आदि से, कृत्रिम मित्र वे हैं जो प्राप्त किये जाते हैं अर्थात् विजिगीषु को अपनी सहायता से अनुगृहीत करते हैं या जो स्वयं अनुगृहीत होते हैं, तथा प्राकृत मित्र वे हैं जो पड़ोसी राजा की सीमा से सटे हो।

मित्र के साथ–साथ शत्रु कौन होता है, उसके गुण क्या है? यह भी जान लेना आवश्यक है। जिस किसी के भी मन में ईर्ष्या या विद्वेश

हो चाहे जिस किसी भी कारण से हो वही शत्रु होता है। इनकी विशेषता स्पष्ट होती है कि वह लोभी, अन्यायी, स्वेच्छाचारी, तथा दुष्ट कर्म करने वाले होते हैं। विजिगीषु की राज्य–सीमाओं पर रहने वाला राजा अरि कहलाते हैं। कामन्दक ने विजिगीषु की परिभाषा करते हुए कहा है कि "जो अपने राज्य का विस्तार करना चाहता है, जो राज्य के सातों तत्त्वों से संपन्न है, जो महोत्साही है और जो उद्योगशील है, वह विजिगीषु कहलाता है।[49] मनु के अनुसार राजा को अपने साधनों को ऐसा व्यवस्थित करना होगा कि उसके मित्र, उदासीन एवं शत्रु उसकी हानि न कर सके या उससे ऊँचे न हो जाएँ। इस प्रकार प्राचीन काल में लोगों के अन्तःकरण में राज्य के अंगों की स्पष्ट धारणा थी।

राज्य को एक सजीव रचना के रूप में स्वीकार किया गया है। जिस प्रकार एक विशाल वट वृक्ष अपनी विविध जड़ों पर टिका रहता है उसी प्रकार यह राज्य रूपी वृक्ष भी इन सात जड़ों पर टिका हुआ है। कौटिल्य का विचार राज्य के सप्तांगों के सम्बन्ध में अत्यन्त व्यावहारिक प्रतीत होता है। कौटिल्य के अनुसार पूर्ववर्ती अंग, परवर्ती अंग से अधिक महत्त्व का है जैसे अमात्य जनपद से, जनपद दुर्ग से आदि। किन्तु राजा को सभी अंगों से महत्त्वपूर्ण बताया है और राजा को उनका आधार स्वीकार किया है। गुप्तकाल में सप्तांगों के दृष्टिकोण मे परिवर्तन किया है। मनु के अनुसार सातों अंगों में से किसी एक को अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि सभी का महत्त्व समान है। कामन्दक का मत है कि सातों अंग परस्पर पूरक है। मनु ने राज्य के अंगों की तुलना संन्यासी के तीन दण्डों से की है जो एकाकार होकर त्रिदण्ड का रूप धारण करता है। शुक्र ने भी मानव शरीर से राज्य के अंगों की तुलना स्पष्ट रूप से की है। शरीर के अंगों से राज्यांगों की समता का कारण था स्वामी की महत्ता। अमात्यों और दण्डनायकों की वंशानुगतता और स्वच्छन्दता को प्रतिबंधित करने के लिए इसे राजा के अंगों के रूप में कह कर नियंत्रित किया गया था। राज्य रूपी शरीर की इकाई से इन अंगों को जोड़ा गया था पर आधुनिक विचारकों द्वारा शरीर रूपी राज्य की अवधारणा से प्राचीन भारतीय शरीर राज्य की अवधारणा बहुत कुछ भिन्न है। प्राचीन भारत में प्रचलित राज्य के आधार रूप सप्तांगों की परिकल्पना हमारे पुरातन राजनीतिक दार्शनिकों की देन थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शतपथ ब्राह्मण – 1/8/1/24
2. स्वाम्यमात्यजनदुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। – कौटिल्य– 6.1 स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा। सप्त प्रकृतयौः ह्योताः सप्तांग राज्यमुच्यते।। – मनु 9.294
   स्वाम्यमात्यौ जनो दुर्गं कोशो दण्डस्तथैव च। मित्राण्येताः प्रतयो राज्यं सप्तांगमुच्यते।। – याज्ञवल्क्यसमृति– 1.353
   स्वाम्यमात्यदुर्गकोशदण्डराष्ट्रमित्राणि प्रकृतयः। – विष्णु धर्मसूत्र – 3.33
3. राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः। – कौटिल्य , 8.2
4. तेशु तुश तुकृत्येशु तत्तदंग विशिष्यते। येन सत्साध्यते कर्म तस्यिमस्तच्छेष्ठमुच्यते।। – मनु० 1/297
5. शुक्रनीतिसार – । .61–62
6. परस्परोपकारीदं सप्तांग राज्य मुच्यते। – कामन्दकनीति, 4.1
7. गौतम धर्मसूत्र – 11.1–8आपस्तम्ब धर्मसूत्र– 2.6.25.10, 2.10. 25.11
8. महाभारत, शान्ति पर्व, 59.125
9. मनु– 7.8, महा, शान्ति पर्व – 69.62, याज्ञवल्क्य – 1.353
10. महाभारत –शान्तिपर्व – 57.41
11. राजनीति प्रकाश, कात्यायन, पृ० 30
12. सर्वदेवमयो राजा मनुना संप्रकीर्तितः। तस्मात्तमेव सेवेत न व्यलीकेन कर्हिचित्।। (पंचतन्त्र – 1.120)
13. कौटिल्य अर्थशास्त्र – पृ० – 9–10, 12, 15 आदि।
14. कृश्णुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवमवां इभेन। – ऋग्वेद – 4.4.1
15. कौटिल्य अर्थशास्त्र – 1.8.14
16. सहरायसाध्य राजत्व चक्रं एकं न वर्तते कुर्वीत सचिवान तसमात तेषां श्रृणुयाम मतम्। (कौटिल्य अर्थशास्त्र – 1.7.13)
17. मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्भाः। तदुद्देश संवतः कथानामानेस्रावी पक्षिभिरनालोक्यः स्यात्। श्रूयते हि शुकसारिकाभिर्मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः। (कौ० अर्थशास्त्र – 1.15)
18. सज्जमानकार्येशु निरून्ध्युर्मन्त्रिणो नृपम्। गुरूणामिव चैतेशां श्रृणुयाद्वचनं नृपः। नृपस्य ते हि सुहृदस्त एवं गुरूवो मताः। य एनमुत्पथागतं वारयन्त्यनिवारिताः। सज्जमानकार्येशु सुहृदो वारयन्ति ये। सत्यं ते नैव सुहृदो गुरूवो हि ते।। (कामन्दक नीति –3.31, 44–45)
19. मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कार्यानुश्ठानमायतिः। आयव्ययौ दण्डनीतिरमित्रप्रतिशेधनम्।। व्यसनस्य प्रतीकारो राजराज्यभिरक्षणम्। इत्यमात्यस्य कर्मेदं हन्ति स व्यसनान्वितः।। – कामनदकनीतिसार – 13.23–24। आयो व्ययः स्वामिरक्षा तन्त्रपोशण चामात्यानामधिकारः। – नीतिवाक्यामृत (अमात्यसमुद्देश) पृ० 185
20. मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य। – ऋग्वेद 7 4.42.1
21. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणों ब्रह्मवर्चसी जायतामस्मिन् राष्ट्रेराजन्य इशव्यः शूरा महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरानिध्र्योशा जिश्णू रथेष्ठाः सभेयों युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे नः पर्जन्यो वर्शतु फलिन्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्। 7 यजुर्वेद, 22.22
22. प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार और संस्थाएं – रामशरण शर्मा , पृ० 50
23. अल्पोदकतृणो यस्तु प्रवातः प्रचुरातपः। स ज्ञेयो जांग्लो देशो बहुधान्यादिसंयुतः।। – मनुस्मृति – 7.69
24. भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिभष्यन्द–नमनेन वा निवेशयेत्। शूद्रकर्शकप्रायं कुलशतावरं पंचशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत्। – (कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2.1)
25. अल्पशेशमिदं कार्यं दृश्टेयमसितेक्षणा। त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते।।न साम रक्षः सु गुणाय कल्पते न दानमर्थोपचितेशु युज्यते। न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः पराक्रमस्त्वेव ममेह रोचते।।– रामायण, सुन्दरकाण्ड (41.23)
26. ऋग्वेद – 5.34.7
27. जनकोशात्मगुप्तये। – याज्ञवल्क्यस्मृति 7 1.321
28. मनुस्मृति – 7.74
29. कौटिल्य अर्थशास्त्र – 2.3–4
30. मनुस्मृति – 7.70
31. कोशश्च सततं रक्ष्यो यत्नमास्थाय राजभिः। कोशमूला हि राजानः कोशो वृद्धिकरो भवेत्।। – महाभारत शान्तिपर्व, 119. 16कोशमूला हि राजेति प्रवादः सार्वलौकिकः। – कामन्दक नीतिसार, 13.33 । कोशस्तु सर्वथा अभिसंरक्ष्य इत्याह गौतमः। – बुधभूषण, पृ० 36
32. कोशमूलाः कोशपूर्वाः सर्वारम्भाः। तस्मात्पूर्व कोशमवेक्षेत। – कौटिल्य अर्थशास्त्र 2.2
33. कामन्दकनीतिसार – 5.78–79
34. मानसोल्लास – 1.4.394
35. सारतो वा हिरण्यमाढ्यान्याचेत। यथोपकारं वा स्ववशा वा यदुपहरेयुः स्थानछत्रवेष्टनविभूशाश्चैशां हिरण्येन प्रयच्छेत्। – अर्थाशास्त्र, 4.2
36. कात्यायनः। भूस्वामी तु स्मृतो राजा नान्यद्रव्यस्य सर्वदा। तत्फलस्य हि षड्भागं प्राप्नुयान्नान्यथैव तु।। भूतानां तनिनवासित्वात्स्वामित्त्वं तेन कीर्तितम्। – राजनीतिप्रकाश – पृ० 27।

37. अन्यायेन हि यो राष्ट्रात्करं दण्डं च पार्थिवः। सस्यभागं च शुल्कं चाप्याददीत स पापभाक्।। – कात्यायन, राजनीतिप्रकाश, पृ० 276
38. अग्निरिव मन्यो त्विशितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि। – ऋग्वेद, 10.84.2
39. दण्डः चतुरंगसैनयं न भवति। अपराधानुसारेण शारीरोऽर्थदण्डः परिकल्पनीयः। अयमभिसन्धिः – सुमन्तुमते चतुरंगसैन्यस्थ कोश एवान्तर्भाव इति।(स०वि०, पृ० 46)
40. मौल भृतक श्रेणी मित्रामित्राटवीबलानां समुद्दानकालाः। – कौटिल्य अर्थशास्त्र, 9.2कामन्दकनीति, 18.4, मानसोल्लास 2.6
41. यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत्प्रज्ञाबलमुच्यते। – महा०, उद्योग० – 37–55
42. धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्। बलाबले विनिश्चित्य तप एव परं बलम्।। – महा०, आदिपर्व, 175, 45–46
43. न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचित्सुहृत्। अर्थतस्तु निबन्ध्यन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।। – महाभारत, शान्पिर्व – 138, 110
44. कारणेन हि जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा। – कामन्दकनीति – 8.52
45. हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते। यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्याचतिक्षमम्।। – मनुस्मृति – 7.208
46. सहार्थो भजमानश्च सहजः कृत्रिमस्तथा। – महाभारत, शान्तिपर्व – 80.3
47. औरसं कृतसम्बन्धं तथा वंशक्रमागतम्। रक्षितं व्यसनेश्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम्।। – कामन्दकनीति – 4.74
48. कामन्दकनीति – 4.72
49. संपननस्तु प्रकृतिभिर्महोत्साहः कृतश्रमः। जेतुमेषणशीलश्च विजिगीषुरिति स्मृतः।। – कामन्दकनीति, 8.6